VOL- VIII ISSUE- V MAY 2021 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.149 ISSN 2349-638x

तीसरा पक्ष और मानवीयता का राग : यमदीप उपन्यास

चेतन विष्णु रवेलिया
एम. ए. नेट जे. आर. एफ.
पता – ४४३१, आलकुटे प्लॉट्स, द्वारकाधीश कालोनी के पीछे
आलमगीर, भिंगार, अहमदनगर, महाराष्ट्र
chetanraweliya4431@gmail.com

सारांश :

हिंदी साहित्य का वर्तमान दौर अस्मितामूलक और मुक्तिकामी समुदायों को वाणी दे रहा है। सदियों से जो समाज का अभिन्न हिस्सा रहें वें स्त्रियाँ, दलित, आदिवासी, वृद्ध , थर्ड जेंडर आदि अपनी आवाज को साहित्य के माध्यम से मुखर कर रहे हैं। हिंदी में आज जिनका हाशियाकरण किया जा रहा है वें हिंदी साहित्य में बहुत पूर्व से ही अपनी उपस्थिति दर्ज करवा चुके हैं किंतु आज जब उन्हें समाज की मुख्यधारा से ही बेदखल किया जाने लगा तो उन्होंने साहित्य को ही साधन के रूप में अपनाया और अपनी स्थिति मजबूत करने का प्रयत्न किया और कर रहे हैं। इक्कीसवीं शताब्दी में नीरजा माधव का 'यमदीप' उपन्यास एक बिल्कुल अलग प्रकार के विषय को लेकर आया। जब अधिकांश रचनाकारों का ध्यान स्त्री विमर्श और दलित विमर्श पर था नीरजा जी ने थर्ड जेंडर समुदाय पर समूचे हिंदी साहित्याकाश का दृष्टिपात करवाया। यमदीप के माध्यम से उन्होंने इस समुदाय के विविध प्रश्नों को वाणी प्रदान की और उसे समग्रता से समाज के सामने लाया। विवेच्य शोध आलेख में मैंने इसी उपन्यास के बहाने थर्ड जेंडर समुदाय पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।

बीज शब्द : *थर्ड जेंडर, अस्मितामूलक, मुक्तिकामी, हाशिया, समलैंगिक, मुख्यधारा, समकालीन, विमर्श, नीरजा माधव, यमदीप*

समकालीन दौर विमर्शों का है। जिन भी समुदायों का हाशियाकरण किया गया उन्होंने अपनी आवाज को मुखर किया साहित्य के माध्यम से। स्त्री, आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यांक, वृद्ध और इक्कीसवीं शताब्दी की शुरुवात के साथ ही थर्ड जेंडर आधारित साहित्य लिखने की शुरुवात हो गई। इन सभी अस्मितामूलक या मुक्तिकामी विमर्शों ने आज साहित्य में अपनी जड़ें गहरी जमा ली हैं और यही कारण है कि हाशिये से अब ये केंद्र में आने लगे हैं। स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यांक तो अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ही रहे हैं किंतु एक समुदाय अब भी ऐसा है जो समाज द्वारा न तो मान्यता प्राप्त कर पाया और न साहित्य में ही समाधानकारक रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा पाया। सामान्यत: हम समाज को केवल स्त्री – पुरुष इन दो लिंगों पर ही आश्रित मानते हैं किंतु एक पक्ष और है, जो सदियों से समाज के एक अंग होने और अपनी पहचान स्थापित करने हेतु आज भी जद्दोजहद कर रहा है। यह कितना भयावह तथा लज्जास्पद है कि एक

ऐसा समुदाय जो इंसान होकर भी इंसानों जैसा व्यवहार पाने हेतु लालायित है। हमारी सोच की फिटन में जो फिट नहीं बैठ पाते वें बड़ी सहजता से 'अलग', 'असामान्य' और 'अप्राकृतिक' घोषित कर दिए जाते हैं। सभ्य कहलानेवाले समाज में विभिन्न नामों से संबोधित किए जानेवाले इस वर्ग को थर्ड जेंडर (जो न तो पुरुष है और न स्त्री) में शामिल किया गया। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक है जिसमें पुरुष को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। और यही कारण है कि स्त्री हो या थर्ड जेंडर सदैव से उपेक्षित रहे और हाशिए पर ही धकेले गए। एक ऐसा वर्ग जो सभी दृष्टियों से सक्षम है आखिर क्यों किनारे कर दिया गया?

यदि मैं साहित्य और समाज में इस पक्ष की उपस्थिति पर दृष्टिपात करवाना चाहूँ तो वैदिक तथा पौराणिक काल से ही ये लोग साहित्य में चित्रित होते रहे हैं। यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो फिर यह भी स्पष्ट है कि इनका अस्तित्व समाज में अवश्य रहा तभी तो महाकाव्यों में इन्हें स्थान मिला। विश्वभर की अनेकों सभ्यताओं में भी ये लोग सदैव से उपस्थित रहे हैं। फिर भी उन्हें वें अधिकार नहीं मिले जिनके वें हकदार हैं। हर दृष्टि से सक्षम यह समुदाय अपनी पहचान के लिए आज भी संघर्षशील है।

हिंदी के आधुनिक काल में समलैंगिक प्रेम को संभवत: पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'चाकलेट' कहानी में सर्वप्रथम स्थान मिला जो सन 1924 में मतवाला पत्रिका में छपी और उनके साहित्य ने घासलेटी साहित्य की संज्ञा तक पाई। उर्दू कथा साहित्य की मूर्धन्य लेखिका इस्मत चुगताई की 'लिहाफ', राजकमल चौधरी की 'मछली मरी हुई' आदि कहानियाँ अपरोक्ष रूप से इसी हाशिए पर धकेले जा रहे वर्ग को अभिव्यक्त करती दिखाई देती हैं। निराला के उपन्यास कुल्लीभाट में भी इसी वर्ग का चित्रण मिलता है। इन रचनाओं ने आज थर्ड जेंडर विमर्श के रूप में हिंदी साहित्य में बीजभूमि का कार्य किया। शिवप्रसाद सिंह की बिंदा महाराज, बहाव वृत्ति किन्नर जीवन को मुखरित करती हैं। यह भी ध्यान रखना अनिवार्य है कि आज जिसे थर्ड जेंडर के रूप में जाना जाता है वह समलैंगिकों से भिन्न संकल्पना है। **LQBTQIA** समुदाय के लोगों की मान्यता है कि **T** – अर्थात ट्रांसजेंडर समग्रत: इसी संकल्पना को अभिव्यक्त करते हैं। किंतु इस इंद्रधनुष्यीय छाते के नीचे की ये सभी संकल्पनाएँ भिन्न – भिन्न विश्लेषण की माँग करती हैं। थर्ड जेंडर समुदाय से संबंधित साहित्य में कथा साहित्य के साथ कविता विधा में भी लेखन कार्य चल रहा है किंतु स्वानुभूति के आधार पर कम सहानुभूतिपरक साहित्य ही अधिक रचा जा रहा है इसके पीछे भी कई कारण जिम्मेदार हैं।

भारत में अंग्रेजों द्वारा **1861** में एक कानून बनाया गया था जिसके तहत समलैंगिकता को अपराध घोषित किया गया। गौरतलब है कि ब्रिटिश यहाँ से चले गए और जाकर अपने देश में उन्होंने इस कानून को खत्म कर दिया लेकिन भारत में यह ज्यों का त्यों रहा। यह हमारी

उदासीनता ही थी। वर्षों तक इतना ज्वलंत विषय अनछुआ ही रहा। सन 2014 में ट्रांसजेंडर समुदाय को तीसरे लिंग का दर्जा मिला किंतु समाज के द्वारा इनके साथ किए जानेवाले व्यवहार में किसी भी प्रकार का सुधार नहीं आया। इसके उपरांत 2018 में आईपीसी की धारा 377 को खत्म कर दिया गया। अब समलैंगिक संबंध जुर्म नहीं है। सरकारी स्तर पर इन्हें कुछ राहत मिली किंतु अब भी इनके कई प्रश्न हैं जिन पर ध्यान दिया जाना जरूरी है।

इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में अर्थात सन 2002 में नीरजा माधव जी का 'यमदीप' उपन्यास पहला उपन्यास है जिसमें थर्ड जेंडर समुदाय को समग्रता में चित्रित किया गया है। वर्षों से उपेक्षित इस समुदाय के प्रति किसी रचनाकार का ध्यान नहीं गया। वें नीरजा जी हैं जिन्होंने इस ज्वलंत मुद्दे को उठाया। इसके उपरांत प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', निर्मला भुराड़िया का 'गुलाममंडी', चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा', महेंद्र भीष्म का 'मैं पायल' तथा अनुसूया त्यागी का 'मैं भी औरत हूँ' आदि उपन्यासों में इस समुदाय के विविध अंगों एवं पक्षों का चित्रण किया गया। लिखना और शोध पूर्ण लिखने में अंतर होता है। नीरजा जी का स्वयं इन समुदायों की बस्तियों में जा - जाकर और उनसे बोल - बतियाकर उनकी समस्याओं से अवगत होना और उससे संवेदित होकर लेखन करना अवश्य ही दुरूह कार्य रहा होगा। और यही कारण है कि इस उपन्यास में इतनी जीवंतता आ गई है। यह उपन्यास इस समुदाय के प्रश्नों, आकांक्षाओं, समाज के साथ उनके रिश्तों, उनकी अस्मिता, बोली - बानी सभी को अपने में समेटता है। कथा है तो थर्ड जेंडर समुदाय से संबंधित किंतु उसमें स्त्री विमर्श का पुट भी नजर आता है लेकिन यह संपूर्ण कथा तथा उसकी मूल संवेदना के साथ यों गहरे गूँथा गया है कि अलग से टाँका गया प्रतीत नहीं होता। दूसरी बात इसका शीर्षक रोचकता के साथ - साथ समूची कथा के साथ न्याय भी करता है। भारतीय संस्कृति में दीपावली के एक दिन पहले यम के नाम से दीया जलाकर घूरे पर रखने की प्रथा है। और उसे जलाकर पीछे पलटकर देखा नहीं जाता। लेखिका ने उसी प्रतीक का प्रयोग कर इस समुदाय की पीड़ा और कथा वस्तु से बिंध दिया है। लेखिका लिखती हैं, "घर के दीये को केवल यम से संवाद करने के लिए उठाकर घूर (कूड़ा करकट) पर रख देना और फिर उधर मुड़कर न देखना कि वह कब जलते-जलते बुझा, सत्य से विमुख होना है।"१ यह वास्तविकता है कि ऐसे बच्चों के जन्म होते साथ उन्हें फेंक दिया जाता है या किसी की कृपादृष्टि से बच भी गए तो बड़े होते - होते इनका जीवन अभिशाप बना दिया जाता है।

कहानी का आरंभ होता है एक पगली स्त्री के सड़क पर प्रसव पीड़ा से छटपटाते हुए। आस - पड़ोस के लोग उसकी कोई मदद नहीं करते किंतु संयोगवश वहाँ से थर्ड जेंडर समुदाय के कुछ लोग जाते हुए उसे देखते हैं। उसका प्रसव

करवाते हैं । लड़की का जन्म होता है । अब ये लोग सभ्य समाज के लिए ठहरे 'अलग' इसलिए वहाँ उपस्थित लोगों से विनती करते हैं कि इसे पाल लो लेकिन लोगों का रवैया अमानवीय होता है । कोई उस बच्ची को संभालने हेतु आगे नहीं आता । नाजबीबी उसे लेकर चली जाती है और उसके पालन – पोषण में उसे कितनी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है यह कहानी में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । मानवी जो एक फीचर संपादक है उसकी और नाजबीबी की कथाएँ परस्पर आ मिलती हैं ।

तथाकथित सभ्य समाज किस प्रकार अपना पल्ला झाड़ चलता है, किस प्रकार संवेदनहीनता को प्रकट करता है और किस प्रकार यह सदैव से उपेक्षित समुदाय अपनी मानवीयता का परिचय देता है इसका उदाहरण कहानी के आरंभ में ही मिल जाता है जब कोई उस पागल स्त्री के बच्चे को संभालने हेतु तैयार नहीं होता । तब नाजबीबी द्वारा कहे गए शब्द महत्वपूर्ण बन जाते हैं, "अरे हम हिंजड़े हैं , हिंजड़े..... इंसान हैं क्या जो मुँह फेर लें ।"[2] नाजबीबी स्वयं को हिंजड़े कह रही है इंसान नहीं यह भी ध्यान आकर्षित करता है । घर ले जाकर वह बच्ची का नामकरण करते हैं – 'सोना' जिसे हर धर्म में समान महत्व प्राप्त है । और यहीं से असल कहानी का आरंभ होता है जिसमें नाजबीबी का प्यार – दुलार सभी कुछ निस्वार्थ भाव से सोना पर उँड़ेला जाता है । आगे चलकर एक डाक्टर द्वारा सोना जैसी नॉर्मल लड़की इस समुदाय के पास होने की सूचना पुलिसों को दी जाती है और पुलिस छापा मारते हैं । और वह नौबत भी आ जाती है जब सोना को नाजबीबी से दूर नारी उद्धारगृह में भर्ती करवाने को मजबूर किया जाता है । इसी नारी उद्धारगृह का जब भंडा – फोड़ होता है तब पुलिस और मानवी के बीच मुठभेड़ होती है जिसमें नाजबीबी छैलू के साथ मिलकर मानवी को बचा लेते हैं ।

थर्ड जेंडर समुदाय के कई प्रश्न हैं जो आज तक अनसुलझे ही रह गए हैं जब हमारा ध्यान ही इस समुदाय पर नहीं जाता तो इनके प्रश्न भी हमारे लिए क्यों मायने रखें? यह केवल और केवल हमारी उदासीनता ही कही जा सकती है । स्त्री विमर्श के तहत स्त्रियाँ अपनी आवाज को मुखर कर रही हैं और उसने अब अपनी स्थिति काफी हद तक सुदृढ़ कर ली है किंतु इस थर्ड जेंडर समुदाय को अब तक सामाजिक मान्यता ही नहीं मिली तो पहचान कैसे स्थापित होगी? कैसी विडंबना है कि व्यक्ति की अपनी अस्मिता के लिए भी समाज की मान्यता आवश्यक है! आज भी इस समुदाय के लोगों को देखते ही हमारे मन में संवेदनशीलता की जगह एक विचित्र – सा भाव आ जाता है और ये उपहास का पात्र बन जाते हैं । यदि ऐसे बच्चे जन्म लेते हैं तो सबसे पहले इन्हें उपेक्षा का पात्र परिवार द्वारा ही बनाया जाता है । यह भी आवश्यक नहीं कि परिवार सदैव इनके प्रति घृणा ही बरतें किंतु रिश्तेदार और समाज इन्हें चैन से जीने नहीं देता

और ये अपने जैसों के बीच जीवन – यापन करने को मजबूर हो जाते हैं। नाजबीबी इस मामले में भाग्यशाली है क्योंकि माता – पिता के द्वारा उसे हमेशा प्रेम और स्नेह ही मिलता है किंतु भाई द्वारा उसी तिरस्कार को उसे भोगना पड़ता है जैसे औसतन लोगों द्वारा इनके साथ किया जाता है। और वह घर छोड़ने को मजबूर हो जाती है।

समाज के जिस वर्ग या समुदाय का हाशियाकरण किया जाता है वह फिर मुख्यधारा में मिलनेवाली किसी भी सुविधा और अधिकारों से वंचित ही रह जाता है। ऐसा ही एक अधिकार है सभी के शिक्षा हासिल करने का। किंतु जो समाज पग – पग पर इन लोगों को हँसी का पात्र ही समझता है वह कैसे इनके शिक्षा के प्रति रुझान को बर्दाश्त कर सकता है? तभी तो नाजबीबी जब सोना के दाखिले के लिए विद्यालय जाती है तो वहाँ की एक अध्यापिका का ताना नाजबीबी के कानों में पड़ता है, "आज शायद विद्यालय की छठी मना रही हैं बड़ी बहनजी!"[3] कहने का तात्पर्य यही है कि पढ़ा – लिखा सभ्य समाज क्यों न हो कोई इस समुदाय के प्रति संवेदनशीलता नहीं दिखाता। वास्तविकता यह है कि नाजबीबी और उसके गुरु महताब शिक्षा के महत्व को बखूबी जानते हैं और लेखिका स्वयं भी इसलिए सोना को स्कूल में भरती करवाने हेतु नाजबीबी मशक्कत करती है जिसमें नाजबीबी के गुरु महताब भी पर्याप्त सहयोग करते हैं।

यह समुदाय आज की इक्कीसवीं शताब्दी और मशीनी युग कहे जानेवाले दौर में भी परंपरागत तरीके से ही अपना पेट भरने को मजबूर हैं। इस समुदाय के कुछ अपने नियम और कानून हैं जिसके तहत एक बार इनके पास आ जानेवाले बच्चों का ये लोग नाम बदल देते हैं जिससे इनकी पहचान छिपी रहे। किंतु नाजबीबी अपने माता – पिता से चोरी छिपे बात करती रहती है। इसी से स्पष्ट होता है कि आपसी रिश्ते इतने कमजोर नहीं होते ! रिश्तों में गरमाहट बनी रहती है। यह कितना त्रासदायक है कि ऐसे बच्चे एक बार घर से चले गए तो चले गए! कोई पलटकर इन्हें देखना तक नहीं चाहता। नाजबीबी और उसके माता – पिता दोनों से टेलीफोन पर बात करने में भी उसका भाई किस प्रकार के रोड़े डालता है और उनसे नाजबीबी पर क्या बीतती है इसका मार्मिक चित्रण कहानी में देखा जा सकता है।

कहानी में एक और कहानी है जिसकी नायिका मानवी है जो एक फीच र की संपादिका है। उसकी भी अपनी ही कहानी है। वह मेहनती, आत्मनिर्भर, संवेदनशील और होशियार लड़की है। किंतु स्त्री है! और उसका स्त्री होना ही उसे बारंबार परेशानी में डालता है। हरिंद्र उसका पीछा नहीं छोड़ता। कई बार वह उसे धमकी देता है उलटी सीधी खबरें छापने को कहता है। किंतु मानवी अपनी नैतिकता नहीं छोड़ती। और वह वहाँ के डी. एम. साहब से अपनी परेशानी कहकर उसका समाधान भी ढूंढ लेती है। हरीन्द्र जैसे गुंडों

का खौफ आज भी स्त्री जाती को किस प्रकार परेशान करता है इसकी सच्चाई और स्त्रियों की दुर्दशा मानवी के इस संवाद में दिखाई देती है "कब मुक्त हो पाएगी नारी पितृसत्ता के दमन से? इतने मुक्ति – आंदोलन.. मुझे तो सब व्यर्थ लगते हैं । सब आयातित हैं । शब्द पश्चिम से लपक लिए जाते हैं और यहाँ पर उछाले और खेले जाते हैं, बस और कुछ नहीं । दरअसल नारी को मुक्त होने की आवश्यकता ही नहीं है । पुरुष-मुक्ति आंदोलन चलना चाहिए । पुरुष अहं से मुक्त हो । पुरुष अपने विकारों से मुक्त क्या होगा, हाँ उन पर नियंत्रण रख सके । स्त्री को मात्र देह न समझे, बस नारी मुक्त हो लेगी अपनी समस्याओं से ।"[4]

वर्तमान दौर में धर्म के नाम पर दंगे – फसाद और हिंसा आम बात हो गई है । एक प्रकार का आक्रोश और हिंसात्मक रवैया कुछ लोग अपनाते हैं जिसका खामियाजा उन्हें भुगतना पड़ता है जो निर्दोष होता है। मानवी इसी मुद्दे पर जब इस समुदाय के लोगों का इंटरव्यू लेने हेतु उनकी बस्तियों में जाती है और महताब गुरु से बात – चीत करती है। जिससे इन लोगों की मानसिकता, इनके गुणों पर प्रकाश पड़ता है। मानवी के द्वारा एक प्रश्न किया जाता है कि देश के साथ विश्वासघात करनेवाले लोग आखिर किसका सबक लें तब महताब गुरु द्वारा दिया गया व्यक्तव्य कितना सच्चाई भरा और तथाकथित मुख्यधारा और उसके लोगों पर कडा तमंचा मारता है, "सबक लेना है तो हम हिंजड़ों से लें। न हम लोग गद्दार हैं और न गद्दारी करेंगे। आपस में हम लोग प्रेम से रहते हैं और हम लोग किसी से नफरत क्यों करें? हम लोग इंसान थोड़े ही हैं कि आपस में नफरत करेंगे।"[5] यह सही है ये लोग इंसान नहीं हैं अपितु मानवीय गुणों से परिपूर्ण इंसान हैं न किसी से नफरत करते हैं न किसी को मदद करने से हिचकिचाते हैं और इनमें संवेदनशीलता भी कूट-कूटकर भरी होती है जिसकी औसतन लोगों में कमी ही दिखाई देती है। यह समुदाय हर दृष्टि से सक्षम होने के बावजूद इन्हें रोजगार भी उपलब्ध नहीं होता और ये देह व्यापार करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। बिना प्रेम के अपनी देह को किसी के समक्ष प्रस्तुत करना भी अत्यंत पीड़ादायक है। यदि ये लोग विविध रोजगारों की अर्हता प्राप्त करते हैं तो सामान्य लोगों के समान ही इन्हें भी समान अवसर प्रदान किया जाना नितांत जरूरी है और यही लेखिका की चिंता का विषय भी है।

उपन्यास में इस समुदाय की बोली – बानी और ठेठ शब्दों के प्रयोग भी किए गए जिससे उनके संवादों के साथ-साथ कहानी में और उनके असल जीवन पर भी दृष्टि पड़ती है। उदाहरणस्वरूप टेपका, गिरिया, बडमा, चोसा, डामरी, बधिया, छिंदू आदि शब्द। इस समुदाय की अपनी देवी भी है जिनका नाम 'बेसरा माता' है । कहने का तात्पर्य यह कि हिंजड़ा समुदाय अपनी संपूर्णता में यहाँ उपस्थित है उसका कोई भी पक्ष इससे छूट नहीं पाया। इस

समुदाय के विषय में लोगों में कई गलत धारणाएँ विद्यमान हैं। जैसे ये लोग बच्चों को पकड़कर जबरदस्ती उन्हें अपने समुदाय में मिलाते हैं आदि। किंतु ऐसी बातें केवल इस समुदाय को खुद से अलगाने के साधन प्रतीत होते हैं। यह उपन्यास कई ऐसी गलत मान्यताओं, पूर्वाग्रहों का खंडन करता है। इस विषय में रवीना बरिहा लिखती हैं, "मुझे हमेशा से यह लगता रहा है कि यदि समाज हमको मन से स्वीकार कर ले तो हमारी अधिकतर परेशानियाँ ऐसे ही खत्म हो जाएंगी । हमारे समाज के विषय में लोगों के अंदर अधिकतर बहुत सारी भ्रांतियाँ और पूर्वाग्रह होते हैं जिसे तोड़ना अत्यंत जरूरी है। इसी प्रकार हमारे व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के प्रति भी जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है । मुख्यधारा के समाज और हमारे समाज के बीच एक दीवार है जिसे तोड़ने की आवश्यकता है। "[6]

वर्तमान दौर में राजनीति भी स्वार्थ लिप्सा से ओत - प्रोत है । राजनीतिज्ञों की जवाबदेही जनता के प्रति होनी चाहिए किंतु वास्तविक रूप से ऐसा होता दिखाई नहीं देता । जब वे तथाकथित सभ्य समाज की जनता को ही नहीं पूछते तो इस समुदाय को क्योंकर पूछने लगे! लेखिका ने भ्रष्ट तंत्र के साथ - साथ नारी उद्धारगृह के नाम पर स्त्रियों और छोटी-छोटी बच्चियों का शोषण करवानेवाली महिलाओं की भी अच्छी खबर ली है । यह वर्तमान समय की कड़वी सच्चाई है कि अनाथालय, नारी उद्धारगृह, वृद्धाश्रम जैसी जगहें ही आज लोगों के शोषण की जगहें बन गई हैं । सबसे ज्यादा भ्रष्टाचार इन्हीं संस्थाओं में होता है । कहानी में मानवी जान जाती है कि रीता देवी लड़कियों को सहारा देने के नाम पर राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर उनका शोषण करवा रही हैं । उसका भंडा - फोड़ हो जाता है। रक्षक ही यदि भक्षक बन जाएँ तो सामान्य व्यक्ति के लिए कौन - सा रास्ता बचता है वें किस गली किस ठौर जाएँ?

मुख्यधारा को सभ्य समाज कहकर क्या मैं भी इस उपेक्षित समुदाय को 'अलग' घोषित नहीं कर रहा क्या? वास्तविकता तो यह है कि यह समुदाय हमेशा से समाज का हिस्सा था और रहेगा चाहे हम कितना ही खुद को इनसे अलग मानकर इस बात को झुठलाएँ! मानवी भी पहले - पहल इस समुदाय के विषय में विविध गलत धारणाएँ बनाए हुए थी किंतु जब पुलिस के साथ हुई मुठभेड़ में नाजबीबी उसकी जान बचा कर अस्पताल में भर्ती करती है तब मानवी के मन का सारा मैल भी धुल जाता है । इन्हें किसी भी प्रकार के अवसर कभी दिए ही नहीं जाते इसीलिए नाजबीबी मानवी से कहती है, "अरे, मेम साहब की बात? मेरे आगे-पीछे कौन रोने वाला है जो हार मान जाऊँगी । अरे, बस एक बार मौका मिल-भर जाए तो इन भ्रष्टाचारियों को गिन-गिनकर जूते लगवाऊँगी चौराहे पर और मुँह में कालिख पोतवाकर गली- गली घुमाऊँगी। "[7] लेखिका का मूल उद्देश्य इस समुदाय को अवसर प्रदान करने का भी है । समाज में इस समुदाय के कई लोग अन्यों से अधिक

काबिल साबित होते हैं किंतु अवसर न मिलने के कारण वें पीछे ही रह जाते हैं और परंपरागत काम करने को विवश होते हैं । आवश्यकता है इनके कौशल का सकारात्मक उपयोग करने की। उपन्यास के अंत में नाजबीबी मानवी से कहती है "बस मेम साहब मुझे आप अपनी तरह थोड़ी बुद्धि और कलम की ताकत थमा दीजिए। सहारा दिए रहिए, फिर देखिए.... मानवी चुपचाप घटित हो रहे इस परिवर्तन को देख रही थी। खिड़की से बाहर साँझ के धुंधलके में अपूर्ण चंद्रमा उजास फैलाने को तत्पर था।"[8]

निष्कर्ष :

समग्रत: कहा जा सकता है कि नीरजा माधव का 'यमदीप' उपन्यास अपने आप में थर्ड जेंडर समुदाय की हकीकत बयां करता है । समाज द्वारा इस समुदाय के साथ किया जानेवाला व्यवहार अमानवीय है ही किंतु संवेदनशीलता दिखाकर ही इस समुदाय की स्थिति में परिवर्तन हो सकता है। इस समुदाय के हाशियाकरण में हम सभी जिम्मेदार हैं इसलिए इसे मुख्यधारा से जोड़ना भी हम सभी का दायित्व है । हम इनसे अपना पल्ला झाड़कर नहीं निकल सकते । शिक्षा द्वारा इस समुदाय की स्थिति में परिवर्तन लाया जा सकता है । आरंभिक पाठों में यदि इस समुदाय द्वारा लिखित कृतियाँ रखीं जाएँ तो बालकों के मन में इस समुदाय के प्रति कुछ सजगता आ सकती है । साथ ही इनके स्वास्थ्य संबंधी प्रश्नों, समानता के व्यवहार की कामना, अवसरों की उपलब्धता आदि के लिए हम सभी को मिलकर कार्य करने की आवश्यकता है । सहानुभूतिपरक साहित्य की अधिकता होने के कारण और स्वानुभूतिपरक साहित्य की कमी के चलते आज भी साहित्य में इस उपेक्षित समुदाय के विषय में तथ्य कम भ्रांतियाँ अधिक हैं । इसलिए यह आवश्यक है कि इस समुदाय पर शोधपूर्ण लेखन हो । दूसरे, थर्ड जेंडर विमर्श की सैद्धांतिकी विकसित करने में भी हम अभी पीछे हैं । इन्हें परिवार द्वारा अपनाया जाना भी नितांत जरूरी है । इनके लिए परिवार ही वह संबल बन सकता है जिससे ये समाज में उचित स्थान पा सकें ।

संदर्भ सूची :

१) माधव नीरजा – यमदीप – पृ. ७
२) वही – वही – पृ. १२
३) वही – वही – पृ. ५०
४) वही – वही – पृ. १४९
५) वही – वही – पृ. १६७
६) बरिहा रवीना – 'जुड़ाव जब सकारात्मक हो तो एक आदर्श समाज बनता है' – जनकृति – 'थर्ड जेंडर विशेषांक' – अगस्त २०१६
७) माधव नीरजा – यमदीप – पृ. २८७
८) वही – वही – पृ. २८८